(संस्मरण)

अरुणाचल प्रवास के मेरे अविस्मरणीय दिन

नंद किशोर पाण्डेय

[1]

मैं 17 सितंबर, 2000 को अरुणाचल आया। बारिश का मौसम था। अरुणाचल के विषय में बहुत कम सुन रखा था। जो सुन रखा था, देखा उससे बिल्कुल अलग। मुझे स्मरण आता है कि प्रोफ़ेसर अवधेश नारायण मिश्र, जो उस समय काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे; पहले तेजू में अध्यापन कर चुके थे। उन्होंने जाने के लिए मार्ग सुझाया। गुवाहाटी से ईटानगर पहुंचने के लिए बसों की जानकारी दी और विश्वविद्यालय की भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया। उनका वर्णन यथार्थ था। उन्होंने कुछ अपने मित्रों का भी परिचय दिया कि जरूरत पड़ने पर उन्हें याद कर सकते हैं। मैं उन्हें बड़ा भाई मानता रहा हूं। उन्होंने भी एक छोटे भाई की यात्रा के लिए जिस प्रकार से सुगम स्थितियां हो सकती हैं, वह सब कुछ बतलाया-समझाया। इनरलाइन का न मुझे आभास था, न ज्ञान था। न ही कभी किसी चर्चा में बनारस या राजस्थान में इस संबंध में किसी ने बतलाया था। नियुक्ति पत्र साथ में होने से बंदरदेवा चेक-पोस्ट पर कोई असुविधा नहीं हुई। मेरे पुराने परिचित अब मित्र, डॉ विनोद मिश्र जी ने अवश्य बतलाया कि बन्दरदेवा से निर्जुली आते समय तीन बार बस नदी में उतरती है। लेकिन, चिंता करने की कोई बात नहीं है। नदी में से बस निकल जाती है। बंदरदेवा पर आपको एक लंबे बांस के नीचे से गुजरना पड़ेगा। बारिश होती रहती है, इसलिए छाता रखिएगा। फिर उसी बस में बैठना पड़ेगा। मैं यह नहीं समझ पाया कि इनरलाइन परमिट दिखाने के बाद बस से उतरकर उस डंडे के नीचे से गुजरने का क्या औचित्य है? पास तो पास है, बस में बैठकर दिखाओ या नीचे उतरकर दिखाओ!

खैर, मिश्र जी ने जो कहा था वही सच था। छाता लेकर बस से नीचे उतरा। हल्की बारिश हो रही थी। नियुक्ति-पत्र दिखाने के बाद डंडे के नीचे से निकलकर फिर उसी बस में बैठ गया। थोड़ी दूर आगे जाकर बस नदी में उतरी, फिर सड़क पर आ गई। बनारस में रहते हुए विंध्याचल की पहाड़ियों को देखा था। राजदरी और देवदरी भी गया था। यह जो बंदरदेवा के पास की हरियाली थी, वह अलग थी। पहली बार आंखों ने ऊपर से नीचे तक हिमालय पर पसरी उस सुरम्य छटा को देखा जो देवतात्मा है। सूर्योदय हो गया था। बड़ा, बहुत बड़ा सूरज सुबह के बादलों वाले आकाश से पूर्ण रश्मियों के साथ निकल आया था। अलग किस्म की वनस्पतियां और हल्के जाड़े से बचने के लिए ऊनी वस्त्रों के कुछ अलग परिधान दिखे। मेरे लिए वह पहला अनुभव था जब मैंने पगड़ी की जगह पर शिरस्त्राण के रूप में कुछ रंगीन बाल और धनेश की चोंच सजी हुई देखी। कमर में दाव बंधी थी और लटक भी रही थी। कुछ मध्यकालीन योद्धाओं सा आवरण धारण किए हुए यत्र-तत्र लोग घूमते हुए दिख रहे थे। जिज्ञासावश पूछने पर बस की सीट पर बैठे हुए किसी बिहारी अरुणाचली ने बताया कि यह न्यीशी लोग हैं। उनकी यह परंपरागत वेशभूषा है। जंगल में निरंतर रहने के कारण जीव-जंतुओं से बचाव, जंगल की झाड़ियां-लकड़ियां काटने के लिए अपने पास दाव रखते हैं। जरूरत पड़ने पर जानवर और चिड़िया काटने के काम में इस दाव का उपयोग करते हैं।

यह यहां का आम दृश्य है। धनेश की चोंच प्रकृति की निकटता का वाचक है। यह ठीक है कि इस शौक या परंपरा के कारण धनेश की संख्या में कमी भी हुई है। धनेश अरुणाचल का राज्य-पक्षी है। उसके झुंड-के-झुंड उड़ते हुए यहां देखे जा सकते हैं। यह अलग बात है कि मैंने अरुणाचल में धनेश देखा तो, लेकिन झुंड-का-झुंड उड़ते हुए, कोलाहल करते हुए उनका समूह कभी नहीं दिखा। यह भी बताया गया था कि तेजपुर पार करने के बाद संभव है धान पकने के समय में (यह वही समय था) हाथियों का समूह सड़क पर दिख सकता है। उससे चिंतित होने की कोई बात नहीं है। हाथी स्वयं हट जाते हैं। ऐसा दृश्य दिखा तो सही, लेकिन बरसों बाद। एक नदी पार करने के पश्चात् निर्जुली और बंदरदेवा के बीच भू-क्षरण के कारण सड़क अवरुद्ध हो गई थी। ड्राइवर ने आगे जाने से मना कर दिया। कुछ लोग बस में बैठे रहे, कुछ उतरकर पैंट ऊपर करके सिर पर सामान लादे फुर्ती और चौकसी के साथ कोई 40 फीट चौड़ी सड़क कीचड़ और दलदल मे से होकर पार करने लगे। बस खड़ी थी। मैं बस से उतरा। ऊपर की ओर सीधे तने हुए पहाड़ को देखा। ऊपर से नीचे की ओर लटके हुए पेड़ों को देखकर एकबारगी सहम गया। एक बार तो ऊपर से एक साथ कोई दो ट्रक गीली मिट्टी खड़े पौधों, डालियों और पत्थरों के साथ नीचे उतर आई। इस सब-कुछ के बीच उस पार जाने के लिए आतुर यात्रियों की विवशता और शीघ्रता उन्हें जान पर खेलकर पार जाने के लिए विवश कर रही थी।

मैंने पूछा कि 'यह मलबा कब हटेगा?'
उत्तर मिला- 'इसका कुछ ठिकाना नहीं है।'
'बस कब जाएगी?'
ड्राइवर बोला- 'कुछ ठिकाना नहीं।'
'पार कैसे होंगे?'
'यह आप जाने!'

ज्यादातर लोग जिनके पास एक या दो सामान था, वे खुद से उसे कंधे पर लटका कर या सिर पर रखकर एक आंख से इस पार से उस पार पहाड़ की ओर देखते हुए अपने-अपने इष्टदेव का नाम लेकर उस पहाड़ी दलदल को, जो सड़क पर ढूह की तरह पड़ी थी; पार कर गए। मैंने भी खड़े होकर अपने साहस और बल का अनुमान लगाया। देखा कि यदि बहुत ज्यादा भी होगा तो मेरे घुटने से थोड़ा ऊपर है। दो-तीन सामान मेरे पास थे। मैंने एक सामान को सिर पर रखा और दलदल में आधे में आया तो एक व्यक्ति ने कहा कि 'मुझे 50 रुपये दीजिए, मैं पार रख दूंगा।' जान-में-जान आई। बस में से दूसरा सामान लिया, आधे में फिर उसको दे दिया और उस पार आ गया। 10 सेकंड बाद पानी, कीचड़ और पत्थर का बहता हुआ एक रेला फिर सड़क पर आया। एक महिला को देखा- अब गई, तब गई! लेकिन, बड़ी फुर्ती से अपने बोझ को फेंककर वह एक कदम आगे बढ़ गई और उसी चुस्ती से किसी ने उसे खींच लिया। इस दृश्य ने एक साथ रोमांच और प्रकृति की भयावहता के सामने मनुष्य की बेबसी को जिस प्रकार उपस्थित किया, वह आंखों के सामने आज भी प्रत्यक्ष है। 18 वर्ष बीत गए, कहीं कोई धुंधलापन नहीं है।

एक ऑटो वाला आया और दोइमुख छोड़ने को तैयार हुआ। निर्जुली और दोइमुख के बीच में दिकरांग नदी बहती है। दिकरांग के तट से बहुत सी स्मृतियां जुड़ी हुई हैं। शुरू के वर्षों में हर 10-15 दिन पर कभी अकेले, कभी मित्रों के साथ आना होता था। ऑटो वाले ने बताया कि हैंगिंग ब्रिज से हम ले चलेंगे। उस झूलते हुए ब्रिज

को मैंने दूर से देखा, फिर उसको रोका। वस्तुतः मैं किसी ऑटो वाले को उस पर जाते हुए देखना चाहता था। तब तक एक व्यक्ति स्कूटर लेकर उस पर चढ़ा और वह हिलते-डुलते पार करने लगा। फिर पार कर गया। ऑटो वाले को कहा, अब चलो। ऑटो इस पार लेकर आ गया। रुककर उस नदी में ब्रह्मपुत्र के लघु रूप को देखा। हिमालय और नदी को मेरे आस्तिक मन ने आस्था और कृतज्ञता से भरकर प्रणाम किया। फिर धान की सुनहरी बालियों, कुछ अपरिचित से वृक्षों- जिनके रूप, नाम और फल पहली बार दिख रहे थे- को देखते हुए दोईमुख आ गया। बताया यह गया था कि बस यदा-कदा आती है। यहां से विश्वविद्यालय की दूरी कोई ढाई किलोमीटर है, पैदल भी जाया जा सकता है। एक सैलून देखकर मैं रुक गया। सोचा, चाय पी लेते हैं। सैलून चलाने वाले बिहार के गोपालगंज के थे। उन्होंने बताया कि आप बैठिए, चाय पीजिए, दाढ़ी बनवा लीजिए। बस अभी आएगी। ऐसे आप जाना चाहें तो जा सकते हैं, क्योंकि कुछ दिन पहले ही हिंदी विभाग के एक लेक्चरर वह आपसे भी हृष्ट-पुष्ट हैं- दो बैग लेकर, शायद उनका परिवार भी था- पैदल ही रोनो हिल्स पर चढ़ गए थे। मैंने सोचा कि यह हृष्ट-पुष्ट कह रहा है तो कोई पहलवान आदमी होगा, जो सामान के साथ रोनो हिल्स चढ़ गया होगा। उस समय मैंने अपने को थोड़ा कमजोर पाया और विलंब से ही सही, बस से जाना उचित समझा।

मौके का लाभ लेकर बाजार की तरफ निकला तो देखा- पत्ते ही पत्ते दिख रहे हैं जिन्हें पहचान पाया, उसमें कुम्हेड़े का पत्ता था। हर कोई किस्म-किस्म के पत्ते खरीदकर सब्जी के नाम पर भर रहा था। एक देसी लौकी थी, उसे खरीदने के लिए कई लोग टूट पड़े। ऐसा लगा कि पत्तों के अलावा जो सब्जी आती है, उसको लोग मुंह बोला दाम देकर ले लेते हैं। कई प्रकार के केले के फूलों को बिकते हुए पहली बार पहले ही दिन देखा। एक महिला जोर-जोर से भीमकोल-भीमकोल बोल-बोलकर एक भीमकाय से फूल को महिमामंडित सी करती हुई उसे भीमकोल के नाम से बेच रही थी। उस पहले ही अरुणाचल आगमन के प्रथम प्रवाह से ही भीमकोल देखने और केले की (जिसे असम और अरुणाचल में कोल या कोला कहते हैं) प्रजातियों को जानने के प्रति दिलचस्पी बढ़ गई। पहाड़ों की तलहटी में जंगली केलों के वन और उनमें लगे हुए छोटे-छोटे फलों को देखकर संस्कृत कवियों के वर्णन में आए कदली-वन का दृश्य आंखों के सामने से गुजर गया। सहज आभास हो गया कि भीतरी हिस्से में गजराज इसमें क्रीड़ा करते होंगे।

थोड़ी देर में बस आ गई। बस से उतर, विश्वविद्यालय के चार कमरे वाले अतिथि-गृह में पहुंचा। यहां पहले से मेरे लिए एक कक्ष था, जिसमें हिंदी के ही एक अन्य अध्यापक श्याम शंकर सिंह रह रहे थे। उन्होंने जोर-जोर से हंसकर मेरा स्वागत किया। उनकी कई प्रकार की हंसी मुझे आज भी याद है। मैं भी आह्लादित हुआ कि भारत में हाथ और फूल बढ़ाते तो बहुत देखा है- ऐसा स्वागत भी हुआ था, लेकिन इतनी हंसी फेंकता हुआ स्वागतोत्सुक व्यक्तित्त्व पहली बार देखा। मन खुश हुआ। विश्वविद्यालय संबंधी सारी अच्छाइयों-बुराइयों, व्यस्तताओं और उलझावों-सुलझावों से एक साथ मैं रूबरू हो गया। वे हिंदी विभाग के नवनियुक्त प्रवक्ता श्री श्याम शंकर सिंह थे। थोड़ी देर की बातचीत के बाद ही वह पढ़ने बैठ गए। मैंने परिसर स्थित किसी एक दुकान पर चलने के लिए कहा, तो उन्होंने बताया कि 'मुझे तो कोई काम नहीं है। मुझे पढ़ना है।' पढ़ाई के प्रति ऐसे लगाव को मैंने भीतर तक महसूस किया और कई दिनों तक उनकी पाठ-क्रिया का करीब से अवलोकन करता रहा। पढ़ते-पढ़ते आनंद की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति कैसे होती है, यह श्याम शंकर जी को पढ़ते हुए देखकर लग सकता है। नवों रसों की कायिक, वाचिक और मानसिक अभिव्यक्तियां उनके शरीर में दिखती थीं।

हां, वात्सल्य अवश्य कभी मुखरित नहीं हुआ। विभाग में डॉ. दिनेश कुमार चौबे जी ने कार्यभार ग्रहण कराने में तत्परता दिखलाई। कुछेक घंटे बाद डॉ. नाथ जी भी आ गए। विभाग की प्राध्यापिका कवयित्री डॉ. रेखा द्विवेदी जो तत्कालीन कुलपति डॉ. कमलकांत द्विवेदी की श्रीमती भी थीं, ने हर्ष के साथ अवधी, अंग्रेजी और हिंदी में समान रूप से धाराप्रवाह बोलते हुए स्वागत किया।

पिछले 9 वर्षों के अरुणाचल प्रवास में सैकड़ों लोगों से निकट का संबंध रहा है। मेरे संबंधों के दायरे में विद्यार्थी और अध्यापकों के अलावा सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र के लोग भी बड़ी संख्या में रहे हैं। व्यापारी, मजदूर, शैक्षणिक और गैर शैक्षणिक कर्मचारियों के अलावा भी आम लोगों के बीच रहने का, बातचीत करने का कई कारणों से अवसर मिला। उन सबकी स्मृतियां हैं। अरुणाचल प्रदेश में हिंदी के लिए काम करने वाले अध्यापक तथा प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़े पत्रकारों की स्मृतियां मानस-पटल पर गहरी हैं। इस संबंध में तत्काल मैं डॉ रमण शाण्डिल्य जी को प्रतिष्ठित हिंदी सेवी के रूप में याद करना चाहता हूं। रमण शाण्डिल्य जी ने अपने अध्यापकीय जीवन के प्रारंभ से ही हिंदी पत्रकारिता भी की। हिंदी पढ़ने के लिए विद्यार्थियों को प्रेरित किया। हिंदी की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष किया और लंबे समय तक 'अरुण नागरी' का संपादन किया।

[2]

अरुणाचल प्रदेश लंबे समय तक मेरी कर्मभूमि रही है। यहां मैं स्वतः प्रेरित होकर आया था। आते समय घर-परिवार अपनी पूर्व नौकरी, पूर्वोत्तर की जटिलता, अरुणाचल प्रदेश की कठिनता और इष्ट मित्रों की तरह-तरह की सलाहों-सुझावों पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। मैं सीधा अरुणाचल प्रदेश में हिंदी को पढ़ाने की लालसा लिए चला आया। दो-तीन बैच एम. ए. के बहुत कठिन दौर से गुजरे। छात्रों की संख्या दूसरे बैच में बहुत कम थी। मात्र 4 छात्र थे। पहले वर्ष 10 विद्यार्थी थे, जिनमें कई घरेलू महिलाएं थी। जिन्होंने एम. ए. करने की इच्छा से प्रवेश ले लिया था। विभाग को संभालकर आगे बढ़ाने की एक महत्तर जिम्मेदारी थी। ऑनर्स के विद्यार्थियों का ही प्रवेश होता था। एम. ए. करने के बाद रोजगार की कोई संभावना दिख नहीं रही थी। जनसंख्या की दृष्टि से छोटे से प्रदेश में रोजगार के साधन सीमित हैं। हिंदी के लिए तो और भी सीमित। कुछ संयोग से और कुछ प्रयास से सर्व शिक्षा अभियान के तहत सात सौ के आस-पास शिक्षक अरुणाचल प्रदेश को मिले। हिंदी पढ़े हुए इतने लोग तब थे ही नहीं। जिन लोगों ने 10वीं में तब हिंदी पढ़ी थी, ऐसे लोग बड़ी संख्या में शिक्षक हुए। अरुणाचल के विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों को भी लगा कि हिंदी पढ़ने से भी रोजी-रोटी मिल सकती है। जो लोग 65-70 में विद्यालयों में हिंदी पढ़ाने के लिए अरुणाचल आए थे, उनमें काफी उत्साह था। वे लोग अपने छात्रों को विद्यालय स्तर से ही बी. ए. और एम. ए. में हिंदी पढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे थे। उन्हीं शिक्षकों की प्रेरणा से हिंदी पढ़ने वाले कई विद्यार्थी आज असिस्टेंट प्रोफेसर हैं। विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग खुलने से महाविद्यालय के अध्यापकों में भी गुणवत्तापूर्ण अध्यापन के प्रति रुझान बढ़ा। तत्कालीन राज्यपाल और दलित साहित्यकार माताप्रसाद जी के प्रयासों से न केवल हिंदी विभाग खुला, अपितु राजनीतिक कार्यों में हिंदी को लेकर एक सकारात्मक भाव जगा। लोगों के मन में उत्साह आया। उनकी प्रेरणा से 'अरुण नागरी' नाम से एक साहित्यिक पत्रिका भी प्रारंभ हुई। इस संबंध में डॉ. रमण शांडिल्य की भूमिका की प्रशंसा करूंगा। कुछ वर्ष पहले असम से जी. एम. अग्रवाला जी ने 'पूर्वांचल प्रहरी' का हिंदी में दैनिक प्रकाशन आरंभ किया था। अब यह अखबार पूर्वोत्तर का प्रतिष्ठित और महत्त्वपूर्ण अखबार बन गया है। कुछ विद्यार्थियों ने दिल्ली विश्वविद्यालय

और वनस्थली से बी. ए. किया था। विभाग के खुलने पर उन्हें एम. ए. करने का अवसर मिला। साथ ही शोध प्रारंभ होने पर वह पी-एच.डी. के लिए पंजीकृत हुए। बिना नेट/जेआरएफ, स्लेट के लेक्चरर नहीं हुआ जा सकता था। दो वर्ष बाद ही मैंने पाठ्यक्रम को स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर परिवर्तित किया। इस बात को ध्यान में रखा कि नेट का पाठ्यक्रम एम. ए. के पाठ्यक्रम में अलग-अलग हिस्सों में सम्मिलित हो जाये। संयोग से उन्हीं दिनों रिमेडियल कक्षाएं भी शुरू हुईं। कुछ विद्यार्थियों को चुनकर नेट और स्लेट की तैयारी करवानी मैंने शुरू कर दी। पहली ही परीक्षा में यहां का विद्यार्थी स्लेट और नेट की परीक्षा उत्तीर्ण कर गया। विभाग में पद आने पर 2005 में पहला अरुणाचली यानी आज के हिंदी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉ. ओकेन लेगो लेक्चरर के रूप में नियुक्त हुए। यह पूरे प्रदेश के लिए एक बड़ा संदेश था। अरुणाचल सरकार ने महाविद्यालयों में लगातार हिंदी के व्याख्याताओं के पद सृजित किये। हिंदी का पहला बैच 2001 में एम. ए. पास हुआ। 2007 आते-आते 22 विद्यार्थियों ने नेट और जे.आर.एफ. कर लिया था।

सुदूर पूर्वोत्तर का प्रदेश अरुणाचल प्रदेश है। चीन, वर्मा और भूटान से घिरा हुआ है। ऐसे जंगलों से और पहाड़ों से विद्यार्थी आते हैं जहां हवा भी मुश्किल से प्रवेश करती है। तब ऐसे जिला-केंद्र भी थे जहां तक पक्की सड़कें नहीं थीं। अरुणाचल का विद्यार्थी जुलाई की भयंकर बरसात में अपने घर से चलकर सात दिन में विश्वविद्यालय पहुंचता था। घर से विश्वविद्यालय के बीच आने में पैदल के अतिरिक्त टाटा सूमो, रिक्शा, बस, हेलिकॉप्टर, नाव तथा हाथी की सवारी कर विश्वविद्यालय तक की यात्रा पूरी करता था। वे ऐसे पहाड़ों से आते थे जहां प्रतिवर्ष बरसात में खाद्यान्न उपलब्ध कराने का साधन हेलिकॉप्टर ही हुआ करता था। उन क्षेत्रों के विद्यार्थियों ने भी नेट/जेआरएफ किया। नाहरलगुन के एक महाविद्यालय में बी. एड. की कक्षा में एक प्रश्नपत्र हिंदी का जुड़ा तो 30 विद्यार्थी बी.एड. करने चले आये। पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नहीं था, तो मैं स्वयं सप्ताह में चार दिन सोलह किलोमीटर पहाड़ी पर स्कूटर चलाकर पढ़ाने के लिए जाता था और अंधेरे में लौटता था। प्रारंभिक दिनों के विद्यार्थियों में हिंदी पढ़कर कुछ बनने का भाव प्रबल था। जिजीविषा बड़ी थी। उमंग और उत्साह भी था। शिक्षकों के प्रति उनके घरेलू संस्कारों के कारण आदर का भाव था। वस्तुतः वे एक-एक शब्द को गुरुमंत्र की तरह ग्रहण करते थे।

अरुणाचली विद्यार्थियों की स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी है। भाषा सीखने के प्रति उनके मन में उत्साह है। कुछ वातावरण ऐसा है कि कई भाषाएं आसानी से सीख लेते हैं। उन प्रारंभिक विद्यार्थियों में ही ओकेन लेगो, जोराम आनिया ताना, जोराम यालाम, तेची उपेन तारा, सोनम वाङमू आदि थे। थोड़े बाद में जमुना बीनी, तारो सिन्दिक, तादाम रूती और ताई तुगुङ आये। आज ये लोग न केवल हिंदी साहित्य, न केवल शिक्षा जगत, अपितु अरुणाचल प्रदेश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन के समादृत नाम बन गए हैं। इनके उत्साह, आदर-भाव और लगन को देखकर मुझे यह खुशी मिलती थी कि राजस्थान की नौकरी छोड़कर अरुणाचल प्रदेश में मैं सही समय पर आया। आज इनके उत्कर्ष और पहचान को देखकर और अधिक प्रसन्नता होती है। अरुणाचल के युवा नाम राष्ट्रीय स्तर के नाम बनते जा रहे हैं। प्रायः लोग कहते हैं कि आज की दुनिया बड़ी कृतघ्न है। जब मैं अपने इन विद्यार्थियों को देखता हूं तो लगता है कि किसी के लिए रंचमात्र भी करो तो वह कितने लंबे समय तक याद रखता है। स्वभाव से कड़क होने के कारण यह सब लोग डांट खाते रहते थे। लेकिन ये सब मेरे परिवार में काफी घुल-मिल गए थे। आज मुझे पछतावा भी होता है कि कई बार कई विद्यार्थियों को क्यों भगाया! लेकिन उनके मन में कोई मलाल नहीं है। मैं लौटकर घर आता था तो इन्हें अपनी पत्नी वंदना के साथ गपशप करते हुए

पाता था। सोनम और यालम तो घर का हिस्सा बन गईं थीं। ओकेन सही मायने में अंतेवासी ही हैं। आनिया, ताई, तुम्बुम, तारो, तादाम, तोकपेट, बनश्री, तेली मोमू, दोगे- सभी विभाग से लेकर घर तक पीछे पड़-पड़कर पढ़ते थे, सलाह लेते थे। कुल मिलाकर लगे रहते थे। आज जो लोग भी इनसे मिलते हैं इनकी प्रशंसा करते हैं। निश्चित रूप से इनके निर्माण में विद्यालयों से लेकर महाविद्यालय तक के शिक्षकों का योगदान है। विश्वविद्यालय, विभाग में मेरी उपस्थिति केंद्रीय स्तर पर होने के कारण इनकी प्रगति के यश का बड़ा हिस्सा मुझे मिला। डॉ. अनंत कुमार नाथ असमीया बोलकर इन्हें संभालते थे। अमरेन्द्र त्रिपाठी के विभाग में आने के बाद काफी बल मिला। चूँकि हमारे शिष्यों की उम्र अमरेन्द्र के बराबर ही थी, इसलिए पढ़ने-लिखने से लेकर पढ़ाने तक-लेक्चरर होने के बावजूद डांट-डपट उतनी ही खाते थे। आज मुझे लगता है कि विभागीय कामों के अतिरिक्त जो कुछ हिंदी का काम हमें मिल जाता था, उसमें उन्हें सहयोगी बनाकर उन्हें डांटने-डपटने का अवसर ढूंढ़ लेता था।

हिंदी विभाग को डिस्टेंस एजुकेशन प्रारंभ होने के बाद हिंदी का पाठ्यक्रम तैयार करने की एक महत् जिम्मेदारी 2006 में मिली थी। इस कार्य को बड़ी तत्परता से और बेहतर ढंग से महाविद्यालय के शिक्षकों ने पूरा किया था। उस कार्य में बेहद दबाव में बड़ी भूमिका अमरेंद्र ने निभाई थी। कई पाठ्यक्रमों के लेखक डॉ. हरीश कुमार शर्मा रहे। मेरे अनन्य मित्र डॉ. विनोद मिश्र ने अपनी पकड़ और पहुंच का उपयोग हिंदी के संवर्धन के लिए किया। वे विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव रहे। वे उम्र में मुझसे कुछ महीने बड़े हैं, इसलिए उनके घर में मेरी भाभी हैं। वे मित्र-भाव के अतिरिक्त पता नहीं क्यों जरूरत न होने पर भी विनम्रता और सदाशयता के भाव के साथ मिलते हैं। मुझे ध्यान है, महासचिव के पद पर नियुक्ति होने पर वे आगरा मिलने के लिए आए थे। हिंदी शिक्षण को रोचक ढंग से हिंदीतर-भाषियों में प्रस्तुत करने की उनकी शैली को मैं यहां रेखांकित करना चाहूंगा। अरुणाचल के तमाम हिंदीभाषी शिक्षकों ने यहां की परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालकर हिंदी पढ़ाने में कोई कोताही नहीं बरती है। मैं व्यक्तिगत रूप से वरिष्ठ और कनिष्ठ अध्यापकों से परिचित हूं जिन लोगों ने मजबूत पृष्ठभूमि तैयार की, उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण नामों की चर्चा में करना चाहूंगा। डॉ. डी. आर. सिंह (अब दिवंगत), डॉ. नागेन्द्र प्रताप सिंह (अब दिवंगत), डॉ. अवधेश नारायण मिश्र (अब सेवानिवृत्त प्रोफेसर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), प्रसिद्ध नारायण चौबे ने पाठ्यक्रम से लेकर शिक्षण-पद्धतियों तक को विकसित किया। यहां के लिए पाठ्यपुस्तकें ने तैयार कीं। डी. आर. सिंह ने अरुणाचल केंद्रित महत्त्वपूर्ण लेखन किया। अवधेश नारायण मिश्र प्रतिभा-संपन्न तो हैं ही, कई विषयों के विशेषज्ञ हैं। स्वभाव से विनम्र और हिंदी के व्यावहारिक पक्ष को मजबूत करने के पक्षधर हैं। उन्होंने अरुणाचल में अल्प समय में अपनी छाप छोड़ी है। नई पीढ़ी में बड़ी संख्या में रचनात्मक लेखक खड़े हुए हैं। तमाम प्रकार के राजनीतिक-सांस्कृतिक समारोहों में हिंदी भाषा में भाषण होते हैं, गीत गाए जाते हैं। अभी राजीव गांधी विश्वविद्यालय ईटानगर का कुलगीत हिंदी में लिखा गया है और इसे भूगोल विभाग के एक प्रोफेसर तोमो रिबा ने लिखा है। इस गीत को विश्वविद्यालय की ई.सी. (कार्यकारी परिषद) ने सहर्ष स्वीकार किया है। यह हिंदी की बढ़ती हुई लोकप्रियता और उसके प्रति सम्मान को दर्शाता है। अब मुझे अरुणाचल और भी ज्यादा अच्छा लगता है। हिंदीतर क्षेत्र में एक साथ अपने इतने विद्यार्थियों और स्वयं के हाथों निर्मित शिक्षकों को देखकर प्रसन्न होना स्वाभाविक है। ये ऐसे ही उन्नत होते रहें, यह कामना है।

*(**लेखकीय परिचय :** प्रो. नंद किशोर पाण्डेय राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान के हिंदी विभागाध्यक्ष हैं। इससे पूर्व आपने केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के पूर्व निदेशक पद पर अपना बहुमूल्य योगदान दिया है तथा राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के संस्थापक सदस्यों में आपका नाम समादृत है। केंदीय हिंदी संस्थान, आगरा के निदेशक पद पर रहते हुए आपने पूर्वोत्तर पर केंद्रित बृहद प्रकाशन योजना को शुरू किया। आपने अरुणाचल प्रदेश की अल्पज्ञात भाषा और बोलियों पर केंद्रित अध्येता-कोश और जनजातीय लोक-साहित्य का विपुल मात्रा में संकलन, संयोजन और संपादन का अभूतपूर्व कार्य संभव कराया है। मोबा: 9997659658, ई-मेल : nkpandey65@gmail.com)*